# ‘इच्छा-मृत्यु’ की स्वतंत्रता दी जाए

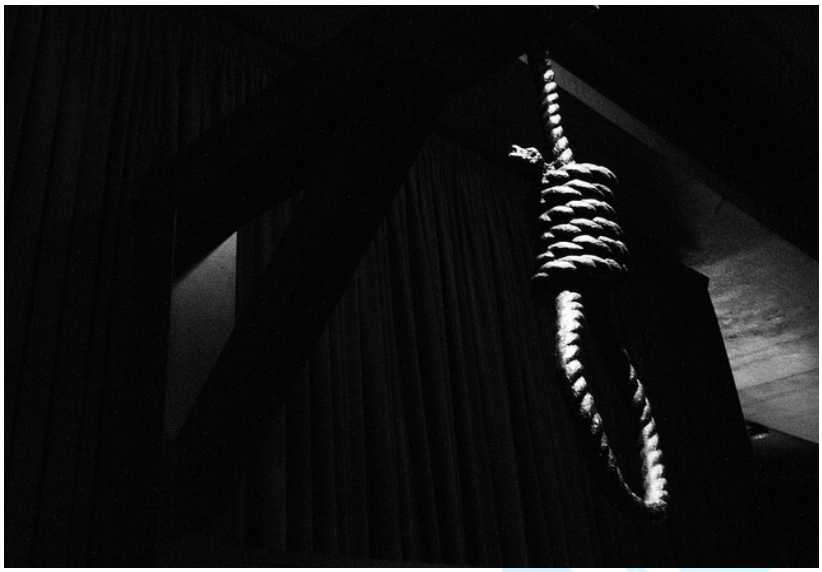

हमारा संविधान हमें स्वतंत्रता का अधिकार देता है। परन्तु जब मृत्युशैय्या पर पड़े किसी व्यक्ति को स्वास्थ्य सेवा या उपचार देने की बात आती है, तब हमारा स्वतंत्रता का अधिकार एक किनारे कर दिया जाता है। कोई भी चिकित्सक व्यक्ति की उपचार लेने की इच्छा या अनिच्छा का आदर न करते हुए उसे कष्टदायक एवं कभी-कभी तो व्यर्थ की उपचार प्रक्रिया में झोंक देने से परहेज नहीं करता।

दरअसल, हमारे स्वास्थ्य तंत्र में किसी मरीज की इच्छा से उसे शांतिपूर्वक प्राकृतिक मृत्यु प्रदान करने जैसा कोई प्रावधान ही नहीं है। चिकित्सकों के दिमाग में यही भरा हुआ है कि उन्हें हर हालत में मरीज की जान बचानी है। उन्हें किसी अन्य विकल्प को साथ लेकर चलने का प्रशिक्षण ही नहीं दिया जाता। प्रशिक्षण की ऐसी कमी चिकित्सा विभाग के चिकित्सको, नर्सों परामर्शदाताओं एवं प्रशासकों; सभी में देखी जा सकती है।हमारे देश में बहुत कम अस्पताल ऐसे हैं, जो सस्ती स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करते हैं। तकनीक का उपयोग निःसंदेह अच्छा है एवं लाभदायक भी है। लेकिन जब किसी मरीज की जीवन रक्षा में महंगी तकनीक भी विफल हो जाती है, तो जनता का संदेह अस्पतालों की लूट-खसोट की नीति पर चला जाता है।

विदेशों में स्थिति भिन्न है। खासतौर पर पश्चिमी देशों में जब 1960 के दौरान आईसीयू की शुरुआत हुई, तो लोगों में उम्मीद जगी। वे मानने लगे कि डॉक्टर ही सबसे अच्छा निर्णय ले सकता है। इसके पीछे मरीजों के ठीक होने की दर काम कर रही थी।

इथूनेसिया की बात सबसे पहले अमेरिका में की गई। इसमें मरीज को अपने जीवन को समाप्त करने के लिए अतिरिक्त चिकित्सा सेवाओं से इंकार करने का अधिकार दिया गया। सन् 1991 में अमेरिकी कांग्रेस ने इससे संबंधित ‘सैल्फ-डिटरमिनेशन विधेयक’ पारित कर दिया। इसके अंतर्गत मरीज को इच्छा-मृत्यु या इथूनेसिया से संबंधित एडवांस डायरेक्टिव के साथ-साथ हेल्थ केयर पावर ऑफ अटार्नी का अधिकार दे दिया। पॉवर ऑफ अटार्नी के द्वारा मरीज के किसी रिश्तेदार या निकटतम व्यक्ति को उसके जीवनरक्षक उपकरण हटाने का निर्देश देने का अधिकार मिल गया।

कई देशों में ‘एण्ड ऑफ लाइफ केयर,**(EOLC)** का चलन है। जैसे ही मरीज को प्राणघातक बीमारी का खतरा बताया जाता है या उम्र के कारण मृत्यु की संभावनाएं व्यक्त की जाती हैं, उसी समय मरीज के परिजनों एवं मरीज से जीवन रक्षक उपकरणों के उपयोग पर परामर्श प्रारंभ कर दिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें स्वाभाविक मृत्यु तक अवसाद, पीड़ा आदि से निपटने में सहायता दी जाती है। ऐसी कोशिश की जाती है कि मरीज की मृत्यु शांतिपूर्वक वातावरण (चाहे अस्पताल या घर) में हो। ऐसा सब संभव होने के लिए मरीज की ‘लिविंग विल’ या

जीवन की इच्छा या अनिच्छा का प्रमाण पत्र ही एकमात्र आधार होता है।भारत में भी ऐसे किसी आधार की जरूरत है, जो व्यक्ति को जीवन की स्वतंत्रता के साथ-साथ एक गरिमापूर्ण एवं शांतिपूर्ण मृत्यु प्रदान कर सके।

**'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित रूप गुरसाहनी, राज के. मणी एवं श्रृंगेश सिन्हा के लेख पर आधारित।**